मूर्ति कला

डा० अलका सोती
विभागाध्यक्षा चित्रकला विभाग
एस.वी.डी. महिला महाविद्यालय
धामपुर (बिजनौर) यू०पी०

भारतीय मूर्तिकला अन्य कलाओ के समान ही अत्यन्त प्राचीन है। मूर्तिकला का वास्तविक रूप हड़प्पा सांस्कृति के समय ही अस्तित्व में आया। हड़प्पा सभ्यता की खुदाई में अनेकों मूर्तियों का पता चला। सिन्धु घाटी की सभ्यता से मूर्तिकला प्रकाश में आई। उस समय मिट्टी की छोटी छोटी मूर्तियॉ बनाई गई। शुरू से ही मूर्तिकला अपना यथार्थ रूप लिए हुए है। जिनमें मानव आकृतियों की कमर पतली, अलग अलग अंगों को लचीला रूप प्रदान किया गया है। सिन्धु घाटी सभ्यता के मोहन जोदडों के जलकुंड, मूर्तिकला के प्राचीन उदाहरण है। दक्षिण के मन्दिरों की नक्काशी, तथा उत्तर में वाराणसी के मन्दिरों की नक्काशी कला के सर्वप्रथम उदाहरण है। केवल यही नहीं मध्य प्रदेश के खजुराहों मन्दिर और उडीसा के सूर्य मन्दिर इस कला के जीता जागता उदाहरण है। सॉची स्तूप की मूर्तिकला भी इसका बेजोड़ उदाहरण है। सारनाथ संग्रहालय में मौर्य की पत्थर की मूर्ति, अमरावती और नागार्जुन घोड़ा की मूर्तियॉ इस कला के अन्य उदाहरण है। मौर्य काल के गोलाई लिए पत्थर के स्तम्भों ने दूसरी और पहली शताब्दी ई०पू० में स्थापित हिन्दू और बौद्ध प्रसंग सहित मूर्तिकला को आगे बढाया।

भारतीय मूर्तिकला का विषय हमेशा से ही मानव का रूप लिये होते थे जो मान को सत्य की शिक्षा देने के लिए होते थे। अधिकतर मूर्ति का प्रयोग देवी–देवताओं के कल्पित रूप को आकार देने के लिए किया जाता था। हिन्दुओं में देवी–देवताओं की अनेको भुजायें और सिर उनकी शक्ति को दिखाने के लिए आवश्यक समझे जाते थे।

भारतीय मूर्तिकला की शैलियॉ निम्न है –

1. सिन्धु घाटी सभ्यता की मूर्ति कला
2. मौर्य मूर्तिकला
3. मौर्योन्तर मूर्तिकला
4. गान्धार कला की मूर्तिकला
5. मथुरा कला की मूर्तिकला
6. अमरावती मूर्तिकला
7. गुप्तकाल मूर्तिकला
8. बाकाटक मूर्तिकला
9. मध्यकाल मूर्तिकला
10. चोज मूर्तिकला
11. आधुनिक मूर्तिकला

समकालीन मूर्तिकला की समस्यायें तथा विशेषतायें भारतीय समकालीन चित्रकला की समस्याओं और विशेषताओं के समान ही है। भारतीय मूर्तिकला की प्रतिमा प्रतीकात्मकता तथा धर्म के आदर्शों से हमेशा दूर हो रही है। चालीस के दशक के आस पास मूर्तिकला दासता की बेडियों से स्वतंत्र हो गई और फिर इसने चित्रकला की भांति प्रेरणा लेने के हेतु पश्चिम की ओर देखना शुरू किया। इसके परिणाम स्वरूप प्रयोग एवं अभ्यास की भावनाओं का सामना भी करना पड़ा। तभी से समकालीन मूर्तिकला अकादमी के रास्ते से गुजरती हुई, वस्तुवाद की यात्रा तक की एक कहानी बन गई है। यह न तो चित्रकला की विविधता को प्रदर्शित करती है और न ही गति को। आरम्भ से ही भारत में मूर्ति कलाओं की एक सशक्त परम्परा रही है। भारतीय मूर्तिकारों को मूर्ति निर्माण से सम्बन्धित सामग्री की समझ ने उन्हें नई ऊंचाई छूने की ओर प्रेरित किया। इसी प्रकार से शास्त्रीय मूर्तिकला में भी पवित्र भावना के साथ साथ आम जन जीवन से सम्बन्धित भावनाओं से आधुनिक मूर्तिकारों को प्रेरणा देती रही है। शास्त्रीय परम्पराओं के साथ–साथ लोक तथा जनजातीय प्रभाव भी देखा गया है।

चित्रकला और शिल्पकला की पुरानी परम्पराओं को अपने आंचल में समेटे राजस्थान में मूर्तिकला को अपनी आजीविका का साधन बनाने वाले मूर्तिकार तो हजारों की संख्या में है। पर इसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम मानने

वालो की संख्या न होने के बराबर है। राजस्थान में आज ऐसे मूर्तिकारों की संख्या कम है, जिनकी कला को आधुनिक मूर्ति की प्रथम श्रेणी में रखा जा सके। अकेले जयपुर में ही मूर्तिकला की परम्परा बहुत पुरानी है। सिलावटो के मौहल्लो में संगमरमर से निर्मित देवी देवताओं की प्रतिमाओं का व्यवसायिकता को ध्यान में रखते हुए निर्माण किया जाता रहा है। इतना सब कुछ होते हुए भी राजस्थान कला परिप्रेक्ष्य की दृष्टि में एक पिछड़ा हुआ राज्य ही है। दक्षिण भारत में मूर्तिकारों के लिए जितने कठोर बन्धन है उतने कठोर बंधन यहॉ पर नहीं है।

परम्परागत मूर्तिकारों की गिनती में मालीराम शर्मा का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता रहा है। मालीराम शर्मा की तरह ही बंगाल के तारापदो मिश्रा (टी0पी0 मिश्रा) ने इसी स्कूल में यथार्थवादी अंकन की परम्परा को आगे ले जाते हुए क्ले माडलिंग के क्षेत्र में अद्वितीय काम किया। पोट्रेट अंकन में टी.पी. मिश्रा को विशेष योग्यता प्राप्त थी।

मालीराम शर्मा के पौत्र लल्लू नारायण शर्मा द्वारा बनाई गई मूर्तियॉ आगरा, हरिद्वार, इटावा तथा बनारस आदि कई स्थानों पर स्थापित की गई है। इनके साथ–साथ गोपीचन्द मिश्रा ने भी मूर्तिकला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होंने कोल्हाटकर से मूर्तिकला की शिक्षा ग्रहण की और जयपुर के मूर्ति मौहल्ले में लौटकर अपनी आजीविका चलाने हेतु देवी देवताओं की मूर्तियों के साथ–साथ संगमरमर और पेरिस और प्लास्टर की मूर्तियों का निर्माण भी किया। व्यक्ति चित्रण के क्षेत्र में महेन्द्र कुमार दास द्वारा बनाई गई सवाई जयसिंह (द्वितीय) की 12 फुट ऊंची प्रतिमा इनकी बनाई गई कृतियों में से एक है।

पचास के दशक में नारायन लाल जैमिनी द्वारा बनाई गई 'संगमरमर का हाथी' उनकी आखिरी विशाल रचना हैं। इनके अलावा अय्याज मौहम्मद, आनन्दी लाल वर्मा, ब्रज मोहन शर्मा, सोहन लाल अत्री आदि का कार्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सन् साठ तक मूर्तिकला पूर्ण रूप से परम्परावादी थी। परन्तु सन् साठ के बाद से यहॉ बाद से यहॉ पर आधुनिकता का पुट नजर आने लगा। इस समय ललिता मिश्रा, गंगाराम वर्मा, अर्जुन लाल वर्मा, ओमप्रकाश नाटन, उषा हूजा, हरिदत्त गुप्ता, आनन्दी लाल वर्मा जैसे कई लोग थे। उषा हूजा ने सीमेन्ट का अपना माध्यम बनाया तो हरिदत्त गुप्ता ने काष्ठ को। उषा हूजा के मूर्तिशिल्प केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहे अपितु वाशिंगटन, स्वीडन तथा फिलीपीन्स जैसी जगहो पर भी लगे हुए है। उषा हूजा की मूर्तिकला पर हेनरी मूर, ऐफटीन, मैलौल, ऐलेग्जैंडर कैन्डर, पिकासो, मोडिंग्लियानी और बांकुनी जैसे मूर्तिकारों के साथ–साथ भारतीय शिल्प कला का काफी प्रभाव पडा। उषा हूजा ने कास्य, सीमेन्ट, कंक्रीट, लकडी, प्लास्टर ऑफ पैरिस, स्क्रैप मेटल और फाइबर ग्लास जैसे माध्यमों में कलाकृतियों की रचना की। इनकी कलाकृतियों की प्रदर्शनी दिल्ली तथा जयपुर के अलावा कैम्ब्रिज, लन्दन, लिवरपूल, डर्बी, न्यूपोर्ट (वेल्स) और मॉरिशस में हुई है। इनके अलावा ललिता मिश्रा, सुमन गौड तथा प्रिया राठौड़, का काम भी प्रभावशाली रहा है हरिदत्त गुप्ता ने नारी आकृति को विशेष रूप से लकड़ी में प्रस्तुत किया। मुगोर धन सिंह पंवार के छोटे आकार के मूर्तिशिल्प काव्य से परिपूर्ण दिखाई देते हैं। कलावृत्त नाम के मूर्ति शिविरों में ब्रज मोहन शर्मा, अंकित पटेल, दशरथ, सुथार, रमाशंकर, खुशवास सेहरावत, किशन लाल कुम्हार, विश्वमर मेहता, राजेन्द्र टिक्कू, अजीत सिंह, आर श्री निवास, अंजन कुमार साहा और रमेश श्रीवास्तव जैसे अनेक मूर्ति शिल्पियों का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। रमेश पटोरिया के संगमरमर द्वारा निर्मित मूर्तिशिल्प तथा हिम्मत शाह जैसे मूर्तिकारों का तो जग जाहिर ही है। इनके अलावा राजेन्द्र आर0 मिश्रा के मूर्तिशिल्प परम्परा से परिपूर्ण है। इन्होंने भी अधिकतर संगमरमर को ही अपना माध्यम बनाया है। इन्हीं के साथ–साथ मुकुट बिहारी नाठा ने भी संगमरमर में ही मूर्ति शिल्पों का निर्माण किया है। अर्जुन लाल प्रजापति का नाम और काम दोनों ही यथार्थवादी मूर्तिकला की दिशा में जाना जाता है। संजीव शर्मा, मंजूर अली चौधरी, राजेन्द्र कुमार शर्मा, मेहर अली अब्बारी, देवेन्द्र कुमार शर्मा, पुरूषोत्तम शर्मा, अनूप कुमार शर्मा, अरविन्द कुमार मिश्रा, रवि मिश्रा, गणेश जोशी, मुकुल मिश्रा इत्यादि मूर्तिकला कारों का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

शीशम की लकडी को अपना माध्यम बना अंकित पटेल का काम दूसरे मूर्तिशिल्पकारों से अलग है। युगल और अश्वमुख उनके मूर्तिशिल्पों में से एक हैं। इन्होंने शीशम की लकडी के साथ–साथ सागवान, रोहिड़ा, चीड जैसी भिन्न–भिन्न प्रकार की लकड़ियों को छीलकर फिर काटकर एक दूसरे से जोडते हुए अण्डे का आकार देते हुए शिल्प की रचना की थी। इनकी रचनाओं में हमें लयात्मकता के दर्शन होते है।

प्रख्यात मूर्तिकार स्व0 रामकिंकर वैज से किसी ने एक बात पूछी थी कि आपको चित्र रचना की अपेक्षा मूर्ति शिल्प बनाने में क्या संतोष का अनुभव होता है तब रामकिंकर वैज ने कहा था कि "हॉ मुझे मूर्ति बनाना ज्यादा अच्छा लगता है। वह गोलाकार है, प्रकाश रहता है ..... प्रदक्षिणा ..... चारो ओर से। चित्र देखकर मन होता है कि पीछे क्या है ? इसलिए मूर्ति ..... एक ओर से चारों ओर को देखना .... चित्र एक ओर से ..... मूर्ति चारों तरफ। रात में मॉ अपने बच्चे को देख नहीं पाती। पर अंधेरे में छूकर जान सकती है। इसी कारण .....।

स्व0 राम किंकर वैज की यह टिप्पणी हर परिभाषा से ऊपर है। मूर्ति त्रिआयामी कला का सबसे जीवन्त प्रमाण हैं विनोद सिंह द्वारा काले संगमरमर में बनाये हुए शिल्प मानव की संवेदनाओं का जीता जागता उदाहरण है। उन्होंने अपने

शिल्पों में एल्यूमीनियम और पीतल जैसी धातु का भी उपयोग किया है। पत्थर पर रचना करने वाले भूपेश कावडियॉ को केवल संगमरमर तक ही रूकने की सोच नहीं रही अपितु वह संगमरमर को लकडी और धातु से संयोजित कर समाज को नये अनुभव प्रदान करते है। इनके सारे शिल्प एक अच्छी सोच और समकालीनता को दर्शाते है। इन्हीं के समान अशोक गौड़ के शिल्प फूलों की तरह सुकुमार होने का अहसास कराते है। संगमरमर, फाइवर ग्लास और धातु जैसे अनेक माध्यमों में बने अशोक गौड के मूर्ति शिल्प मानव के भीतर और बाहर की सौन्दर्य भावना और क्रियाशीलता को दर्शाते है।

भारत में अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने आधुनिक चित्रकला का श्री गणेश किया तो मूर्तिकला में रामकिंकर बैज ने आधुनिकता का श्री गणेश किया। इन्हें आधुनिक भारतीय मूर्तिकला का जनक कहा जाता है। इन्होंने दृढ संकल्प और लगन के कारण मूर्तिकला में जिन ऊंचाइयों को हुआ वह कल्पना से परे है। इनकी कला अन्य मूर्तिकारों के लिए प्रेरणा बन गई। 20 वीं सदी के प्रारम्भ में विदेशी कलाकारों द्वारा निर्मित मूर्तियों की धूम थी। रईस लोग अपने घरों को सजाने हेतु विदेशी कलाकारों से मूर्तियों का निर्माण कराते थे। उस समय विदेशी कलाकारों की कृतियॉ रईस घराने की निशानी समझा जाता था। ऐसी परिस्थिति में देवी प्रसाद राय चौधरी ने इस धारणा को खत्म करने की कोशिश करते हुए कृतियों में भारतीयता का पुट भरने की कोशिश की। चित्रकला और मूर्तिकला दोनों पर ही इनका समान अधिकार था। ब्रॉज माध्यम में काम करने वाले वे पहले आधुनिक मूर्तिकार थे। रामकिंकर बैज ने भी मूर्तिकला में नए आयाम स्थापित किये। देवी देवताओं, राजा महाराजाओं के साथ साथ उन्होंने संथाल परिवार निर्मित कर समाज को एक नई गरिमा प्रदान की। इन्होंने मूर्तिकला में आधुनिक कला की यथार्थवाद, धनवाद से लेकर अतियथार्थवाद तक की भी सभी प्रवृत्तियों को अपनाया। इन्होंने अपने माध्यम में सीमेन्ट तक का प्रयोग किया। इन दोनों के शिष्यों ने पी.वी. जानकीराम, यराज भगत, रंजनी कान्त पंचाल, ए.एम. डाबरी वाला, राघव कनेरिया आदि ने आधुनिक मूर्तिकार को आगे बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके साथ–साथ बंगाल के मूर्तिकारों में प्रदोष दास गुप्त, सखो चौधरी, सुधीर रंजन, खास्तगीर, चिन्तामणि कर, सोमनाथ होर, मीरा मुखर्जी, सुनील कुमार पाल आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को भी प्रकट किया। चिंतामणि कर की कृतियों में वर्तमान के साथ साथ भूत और भविष्य के विभिन्न रूपों को भी देखा जा सकता है। इनकी कृतियों में लयात्मकता के साथ–साथ नवीनता के भी दर्शन होते है। प्रोट्रेट में माहिर शंखों चौधरी का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं हैं इनकी द्वारा बनाई गई मूर्तियों में किसी भी व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व की झलक साफ दृष्टिगोचर होती है। इन्होंने ही दिल्ली में गढी कार्यशाला की शुरूआत की।

सोमनाथ होर एक मूर्तिकार होने के साथ साथ प्रिंट मेकर भी थे। उन्होंने अकाल और युद्ध के दृश्यों को इस तरह से अपने शिल्पों में ढाला कि देखने वाला एक दम आश्चर्य चकित हो जाये। छठे और सातवें दशक के क्रियाशील मूर्तिकारों ने मूर्ति शिल्प में नित नये आयाम स्थापित किये इन मूर्तिकारों की शैली पश्चिमी शैली से बिल्कुल अलग थी। इस समय के प्रमुख शिल्पी है– सरबरी राम चौधरी, माधव भट्टाचार्या, विपिन गोस्वामी, उमा सिद्धान्त, शंकर घोष, दिलीप सरहर एवं माणिक तालुकदार आदि।

मूर्तिकारों की आगे आने वाली पीढी ने इस कला में विषय, माध्यम ओर शैली में तीनों में ही नये–नये प्रयोग किये। इन कलाकारों के लिए मूर्तिकला में ठोस, स्थूलता और आयतन जैसे विषय महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इनके लिए समय महत्वपूर्ण है आज तकनीक का प्रचलन बढ़ा है वहीं प्रचलन उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। आज इनकी कृतियों में आकृति का ही केवल महत्व नहीं है अपितु संसार में घटित हो रही घटनायें, मानवीय समस्यायें भी उतना ही महत्व रखती है। बंगाल के जिन मूर्तिकारों ने देश और विदेश में अपनी पहचान बनाई उनमें प्रमुख रूप से विमल कुंडु, गोपीनाथ राय, सुनील कुमार दास, श्यामलराय, सुभाष राय, सुनन्दा दास, सुनील पाल, सुरजीत दास, रामकुमार मन्ना, इनु मन्ना आदि का नाम उल्लेखनीय है। इंस्ट्रालेशन का प्रयोग भारत में पहली बार विवान सुन्दरम ने किया था।

मूर्तिकला में आधुनिकता भले ही बाद में आई हो पर विषय, माध्यम और तकनीक के कारण मूर्तिकला में नित नये प्रयोग किये जा रहे है। परन्तु इसके साथ ही साथ कुछ मूर्तिकारों की कृतियॉ पेंटिंग की तुलना में काफी कम दाम पर बिकती हैं इसी वजह से आज के युवा वर्ग को मूर्तिकार बनने की प्रबल इच्छा नहीं होती है। साल दो साल में ही किसी गैलरी में सिर्फ मूर्तिकारों की मूर्तियॉ प्रदर्शित की जाती है। इसी वजह से कला के क्षेत्र में जाने वालो की पहली इच्छा चित्रकला ही होती है न कि मूर्तिकला। क्योंकि कृतियों की तुलना में मूर्तियॉ अधिक स्थान घेरती है। कुछ कला प्रेमी मूर्तियों की खरीदारों तो करते हैं तो सिर्फ प्रसिद्ध मूर्तिकारों की मूर्तियाँ। युवा मूर्तिकारों की मूर्तियों को कला प्रेमी खरीदना पसन्द नहीं करते है। इसी कारण से युवा मूर्तिकारों को जीवन यापन करने के लिए अन्य काम को करना पड़ता हैं उदारीकरण के बाद से भारत की मूर्तिकला में जिस प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ है वो किसी भी परम्परागत आदर्श का न होना।

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अनीस कपूर, सुबोध गुप्ता, रविन्द्र रेड्डी, भक्ति खेर, रकीव शाह आदि की मूर्तियाँ करोड़ों में बिकती है। बंगाल के परेश मैइली ने भी विदेशों में भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है। विदेशों में भारत के कलाकारों की कृतियों की अपेक्षा चीनी कलाकारों की कृतियाँ अधिक मूल्य में बिकती है। क्योंकि उन कृतियों में चीनी कला की

झलक को देखा जा सकता है। टेराकोटा माध्यम से बनी मूर्तियॉ बंगाल मे बहुत बडी संख्या मे देखी जा सकती है। मिट्टी में नमी होने की वजह से मूर्तियॉ आसानी से बन जाती है और मिट्टी आसानी से उपलब्ध भी हो जाती है। इसी वजह से पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत तरीके से मूर्तियॉ, खिलौने आदि बनाने की परम्परा बंगाल में देखी जा सकती है। आठवी सदी से बारहवी सदी तक टेराकोटा माध्यम में बनी मूर्तियॉ पत्थर से बनी मूर्तियों से अच्छी है। पहारपुर, चन्द्रकेतुगढ, तामलुक आदि स्थानों से खुदाई में टेराकोटा माध्यम में बनी मूर्तियॉ प्राप्त हुई है। बांकुरा कृष्णनगर मूर्तियों और खिलौने की वजह से प्रसिद्ध भी है। कोलकाता के कुम्हार टोली में, कुम्हार जाति के लोग परम्पराओं को निभाते हुए देवी देवताओं की मूर्तियॉ बनाते चले आ रहे है। यहॉ की बनी दुर्गा प्रतिमाओं की विदेशों में भी मांग हैं लोक कलाकारों को न तो इस क्षेत्र में सम्मान मिल जाता है और न ही उतना पैसा। इसी कारण से आज का युवा वर्ग इस कला को अपनाने से कतराता है। ऐसे में सरकार का दायित्व है कि इन लोक कलाकारों की आर्थिक रूप से मदद करें और इनके लिए भी ऐसी योजनायें बनायें जो कि इन कलाकारों को यथेष्ट सम्मान दिला सके। क्योंकि इन लोक कलाकारों के पास जो परम्पराओं का ज्ञान है, वैसा ज्ञान किसी के पास भी नहीं है। यदि इन कलाकारों को प्रशिक्षण दिया जाये तो इनके द्वारा बनाई गई कृतियों की विदेशों में भी अच्छी कीमत मिल सकती है।

सदियों से प्रसिद्ध भारत में पंचधातु, अष्टधातु, गन मेटल, पेपर मौशि, सेरामिक आदि के साथ साथ हाथी दांत, सींग व हड्डी आदि की सुन्दर मूर्तियों का निर्माण होता आया है। आज नये से नये माध्यमों में मूर्तियों का निर्माण सम्भव है। यह कला विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के द्वारा अपनी कल्पनाओं अपनी सोच और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने एक सृजनात्मक माध्यम है। इस कला में सामग्री और माध्यम उतना महत्व नहीं रखते हैं जितना कि एक कलाकार की सोच और साथ ही साथ उसको उसने किस भावना से प्रस्तुत किया है, यह बात मायने रखती है। इसी वजह से इस कला को इस्ट्रालेशन व एसेम्बलिग के नाम से जाना जाता है। यह माध्यम आधुनिक कला की अभिव्यक्ति के लिए ही प्रयोग में लाया जाता हैं हजारों की संख्या में स्थायी रूप से और अस्थायी रूप से मूर्तियों का निर्माण कार्य चलता रहता हैं जो इस क्षेत्र में युवाओं को अवसर भी प्रदान करता है। आधुनिक रूप में चौराहों पर बागो में, भवनों में आदि जगहों पर मूर्ति लगाने के प्रति लोगों की रूचि बढ़ती जा रही है। मूर्तिकला विशेष रूप से अपना रोजगार करने वाला विषय भी हैं इस कला द्वारा दूसरों को भी प्रशिक्षण देकर उन्हे स्वावलम्बी बनाया सकता है।

अजन्ता, एलोरा, सारनाथ, कोणार्क आदि के मूर्तिशिल्प से कौन परिचित नहीं है। गांधार, मथुरा और कुषाणकालीन मूर्तियॉ जो कि आज हमारी धरोहर है, उस समय के सांस्कृतिक विकास को दर्शाती है। भारत वर्ष में पूरे वर्ष सांस्कृतिक परम्पराओं का आयोजन होता रहता है। जिनके लिए मूर्तियों का निर्माण कार्य भी चलता रहता है। पूजा गृह और मन्दिर की मूर्तियॉ स्थायी होती है। परन्तु त्यौहार आदि के लिए बनाई गई मूर्तियॉ अस्थायी होती है। यहॉ पर हर क्षेत्र के अनुसार पूजा का परम्परागत रूप से विधान भी है जिनके लिए विभिन्न प्रकार की मूर्तियों का निर्माण भी किया जाता है। मूर्तिकला का वर्गीकरण कई बिन्दुओं को आधार मानकर किया जा सकता है ।

1. स्थायित्व के आधार पर
   क– स्थायी
   ख– अस्थायी
2. स्वरूप व आकार के आधार पर
   क– राउन्ड
   ख– रीलिफ
3. सामग्री व साधन के आधार पर
   क– मिट्टी
   ख– प्लास्टर ऑफ पेरिस
   ग– धातु
   घ– सीमेन्ट
   ड– पाषाण
   च– काष्ठ
   छ– फाइवर ग्लास
   ज– मोम व लाख
   झ– एसेम्बलिंग द्वारा
4. पद्धति के आधार पर –'
   क– मॉडलिग
   ख– मोल्डिंग–कास्टिंग
   ग– कार्विग
   घ– इन्स्ट्रालेशन

इन सबके बावजूद भी हम इसे उपासना बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाश्वत आदि के आधार पर भी वर्गीकृत कर सकते है। इसी प्रकार से हम मूर्तिकला के बाहरी रूप और अन्दरूपी मूर्तिकला के रूप में भेद कर सकते है।

एन.जी.एम.ए. का मूर्तिकला का संग्रह देश में सबसे अधिक सम्पन्न संग्रहों में से एक माना जाता है। यह गैलरी अपने संग्रह को और ज्यादा से ज्यादा सम्पन्न बनाने में जुटा हुआ हैं सामान्य से अलग सामग्री के साथ नित नये प्रयोग और पारम्परिक सामग्रियों को मिलाने से प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता है। परम्पराओं के साथ साथ लोक कला से उत्पन्न स्त्रोतों का इन कलाकारों पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। एनजीएमए के संग्रह में रखी राम किंकर बैज, देवी प्रसाद राय चौधरी शंखो चौधरी, प्रदोष दास गुप्ता, पीलू, पोचक नबाला, आदि देवी खाला, चिंतामणि कर, अमर नाथ सहगल, धनराज भगत, मीरा, मुखर्जी, मीरा जी सागरा, राघव कनोरिया, नागजी पटेल, हिम्मत शाह के.जी. सुब्रमण्यम, बलवीर सिंह, कट्ट, लतिका कट्टा, जेराम पटेल,

जगदीश स्वामीनाथन, सतीश गुजराल, मृणालिनी मुखर्जी, मदन लाल, साबरी राय चौधरी के.एस. राघो, कृष्णन, एस नन्दगोपाल, पी.वी. जानकीराम, रवीन्द्र रेड्डी, एन.एन. रिम जोह, पुष्पा एन वालसन कोलेरी, प्रीतपाल सिंह लडी, कार्ल अंताओं और सुदर्शन शेट्टी आदि कलाकारों ने मूर्तिकला के इतिहास का पूरा बखान किया है।

मूर्तिकला ने समाज में आस्था, धर्म और संस्कृति की स्थापना और विकास में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। क्योंकि मूर्तियों का प्रयोग सदियों से अभिव्यक्ति, पूजा, सजावट आदि कार्यों के लिए होता रहा है। अमूर्त शिल्प बनाने वालों में प्रमुख रूप से अर्जुन लाल प्रजापति, मुकुट बिहारी नाठा, जवाहर मिश्र, राजेन्द्र आर मिश्रा, सुमहेन्द्र, हर्ष छाजेड, नरेश भारद्वाज, रूप चन्द्र शर्मा, भूपेश कावडियॉ आदि है। परन्तु आधुनिक मूर्तिकार मानव की विभिन्न मुद्राओं में अपनी बनाई हुई रचना में ही अर्थ संकेत को खोजना चाहते हैं। हरिदत्त गुप्ता से लेकर अंकित पटेल तक यही मूर्ति शिल्प इसी बात का प्रमाण है।

कला की खुश्बू :

अनगिनत रीतिरिवाजों, अनोखी परम्पराओं और न जाने कितनी असंख्य आस्थाओं और विश्वासों का संगम, ऐसा है हमारा भारतवर्ष। अपने ऑचल में न जाने कितनी परम्पराओं, धार्मिक आस्थाओं को समेटे एक विशाल वज्र के रूप में संसार के सामने खड़ा हुआ हैं भारत में सभी कलाओं का संगम सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है जिसकी कला की खुश्बू आज तक केवल भारत में नहीं अपितु विदेशों तक पहुँच चुकी है। ऐसी कोई भी कला नहीं है जिसकी खुश्बू भारत के साथ–साथ विदेशों में भी न देखी जा सकती हो। फिर चाहे वो चित्रकला हो, संगीत कला हो या अन्य कोई भी कला हो। सांस्कृतिक, सशक्त व समृद्ध कलाओं में परम्परागत लोक कला का रंग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। लोक कला की खुश्बू भारत के हर प्रदेश में देखी जा सकती है। लोक कला का विकास आदिम सभ्यता से ही माना जाता है। आदिम कला में मानव संघर्षपूर्ण जीवन जीता हुआ घने जंगलों में रहता था। अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए मानव गुफाओं में निवास करता था। इन अत्यन्त ही विषम परिस्थितियों से जूझते हुए उसने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया। अपनी इन्हीं भावनाओं को व्यक्त करने के पीछे उसमें उसकी मंगल की भावना भी छिपी हुई थी। कला का ज्ञान न होते हुए भी उसने अपनी भावनाओं को रेखाओं द्वारा व्यक्त किया। उस समय मानव ने प्रकृति से प्रेरणा लेकर गुफाओं में प्रतीक चिन्हों के साथ पेड पौधों का भी अंकन किया। मानव की यह विकास यात्रा किसी भी देश से और न ही किसी भी जाति से सम्बन्धित है बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति से सम्बन्धित है। लोक में मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी तरह की गतिविधियॉ आ जाती है। इस कला का उदय समाज के रीति रिवाजों से सम्बन्धित होता है। लोक, समाज में व्याप्त परम्पराओं, रूढ़ियों और विश्वासों से सम्बन्धित होता है। लोक, असीम की भावना के साथ–साथ अनन्त भी है। मानव की कल्पना शक्ति जहॉ तक विचरण करती है। वहॉ तक लोक की सीमा को माना जा सकता है। पुस्तकीय ज्ञान से भिन्न समाज के जन समुदाय की अनुभूतियों को व्यक्त करना ही लोक कला है। लोक कला परम्पराओं को अपने अन्दर समेटे, रीति रिवाजों और धार्मिक विश्वासों का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। पीढी पर पीढी लोक कला का प्रचलन चलता रहता है। पीढी दर पीढी से मतलब यह है कि एक पीढी अपनी आने वाली पीढी को भेंट स्वरूप इन लोक चित्रों को देता है तभी आने वाली पीढी उन चित्रों का महत्व समझ पाती है। इन चित्रों का महत्व भी तभी माना जाता है कि आने वाली पीढी इन चित्रों की कलात्मकता को ध्यान में रखकर इन चित्रों का सही उपयोग कर सके।

भारत में जितनी भी सांस्कृतिक कलायें है उन सभी कलाओं का लोक कला से बहुत ही गहरा नाता है। इन सभी कलाओं का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सभी कलाएं एक दूसरे के बिना अधूरी सी प्रतीत होती है। इसी रिश्ते की वजह से आज तक सभी लोक कलाएं परम्पराओं का निर्वाह करती हुई विकास की राह पर बढ़ती चली जा रही है जो कि आज तक अपवाद के रूप में युगों युगों से चलती चली आ रही है फिर चाहे वह लोक कथा हो, लोकगाथा हो, लोक नाट्य हो, लोक गीत हो, लोक नृत्यों हो, लोक वाद्यों हो, लोक संगीत हो, लोक चित्र हो, क्यों न हो। इन सभी कलाओं का मूल रूप आज तक नहीं बदला है और न ही बदलता है। हॉ एक बात अवश्य है कि समय के अनुसार परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इनमें थोडा बहुत परिवर्तन किया जा सकता है। इन लोक कलाओं की भीनी–भीनी खुश्बू आज तक मानव मस्तिष्क को तरोताजा किये हुए है। इन चित्रो के माध्यम से न जाने कितनी गाथाओं, कथाओं और लोक गीतों आदि का पता चल जाता है। कुछ विद्वानों ने लोक कला को कृषकों की कला भी कहा है। शैलेन्द्र नाथ सामन्त के अनुसार लोक कला जन सामान्य विशेषकर ग्रामीण जनों की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। लोक कला प्राचीनता का भाव लेकर आधुनिकता की ओर बढ़ती है। यह मानव के जीवन के विभिन्न क्रिया कलापों से सम्बन्ध भी रखती है। परम्पराओं को अपने साथ लेकर चलने वाली कला ही लोक कला कहलाती है। मंगल की भावना को अपने हृदय में समेटे निरन्तर आगे बढती रहती है। इस कला में अलंकारिता का पुट भरपूर मात्रा में दिखाई देता है। हृदय को स्पर्श करती कृतियॉ संसार में हर जगह अपनी खुशबू बिखेरती हैं। धार्मिक भावनाओं, विश्वासों तथा सामाजिक क्रिया कलापों का अंकन इस कला में प्रुचर मात्रा में किया जाता है।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परम्परा से अवश्य ही जुडा होता है चाहे वह उससे प्रत्यक्ष रूप से जुडा हो या

अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हो। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी प्रकार की गतिविधियाँ इसमें समाविष्ट हो जाती है। कला में अतीत के साथ–साथ वर्तमान की गतिविधियों का भी अंकन किया जाता है। लोक असीम भी है और अनन्त भी है जहाँ तक मनुष्य की कल्पना या सोच जाती है वहाँ तक लोक की खुश्बू को महसूस किया जा सकता है।

मध्य प्रदेश के निमाड़ जनपद का नाम सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। विंध्य और सतपुड़ा के बीच का भाग निमाड़ के नाम से जाना जाता है। शासनिक दृष्टि से भी निमाड़ दो हिस्सों में बंटा हुआ है। पुरातात्विक महत्व के अनुसार यहाँ पर जब उत्खनन कार्य किया गया तो पता चला कि यहाँ पर मानव ढाई लाख वर्ष पूर्व निवास करता था। ऐतिहासिक दृष्टि से भी निमाड़ अपने आप में समृद्धशाली रहा है। यहाँ पर विभिन्न प्रकार की कलाओं के दर्शन होते है। जिनकी खुश्बू आज तक सर्वत्र बिखरी पडी है। निमाड में ऐसा कोई भी त्यौहार नहीं होता जिसका सम्बन्ध मानव जीवन से जुड़ा हुआ न हो। यहाँ पर जिरौती नाग हो अथवा मांडना, प्रत्येक में मानव का विश्वास समाया हुआ हैं निमाड़, इक्ष्वाकु वंश के राजा मानधाता, हैहयी वंश के राजा सहस्त्रार्जुन से लेकर होल्कर वंशीय देवी अहिल्या तक जुड़ा हुआ माना जाता है। इसके अतीत का पूरा इतिहास माहिष्यति इतिहास के आगे पीछे ही घूमता नजर आता है। अगर शुरू से नजर डाले तो निमाड़ का पूरा इतिहास रामायण काल, महाभारत काल, खरदूषण काल, दंडकारण्य, शुंग सातवाहन कनिष्क, अभिसारो, चालुक्यो, भोज, नासिर खान होल्कर, मुगलों और ब्रिटिश शासन से भी जुड़ा हुआ हैं जिस क्षेत्र का इतिहास इतना प्राचीन हो, उस क्षेत्र की कलाओं की खुशबू को भी सर्वत्र महसूस किया जा सकता है। यहाँ की कला की खुश्बू परम्पराओं के रूप में मानव के जीवन में घर कर गई है। निमाड़ के चित्र मंगल की भावना को अपने आप में समेटे, अनेको रीति–रिवाजों, पूजा तथा आस्था को दर्शाते है। कोई भी त्यौहार हो या कोई भी मांगलिक कार्य हो, बिना पारस्परिक चित्रों के पूरा नहीं होता है। पूरे वर्ष इसी प्रकार पारम्परिक चित्र बनाने का सिलसिला चलता रहता है। निमाड़ के चित्रों की परम्परा अपनी सौन्दर्य भावना को आत्मसात किये पूरे विश्व की संवेदनाओं को महसूस करने की हिम्मत रखती हैं। यहाँ की कला की प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ पर प्रकृति से प्राप्त चीजों को ही वे अपनी कला का माध्यम बनाते है। यहाँ के कलाकार अपने घर की दीवार को खाली नहीं देख पाते हैं सदियों से ही यहाँ के कलाकार दीवार अर्थात भित्ति को ही के वास समझकर अनेकानेक सुन्दर चित्रों का अंकन करते चले आ रहे है। यह लोग ब्रुश की जगह लकडी की पतली डंडी में रूई लपेटकर उससे कार्य करते हैं कभी कभी यह रंगीन पन्नियों को प्रयोग में लाते हैं। रंग सयोजन का ज्ञान होते हुए भी यह लोग इस प्रकार का कार्य भी चित्रों को बनाने में करते है। चित्रों को अत्यन्त ही सुन्दर बनाने हेतु सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रयोग प्रत्येक चित्र में देखा जा सकता है साथ ही साथ नाग और विच्छू और स्वास्तिक चिन्ह का प्रयोग भी इनके चित्रों में देखा जा सकता है। आटे के द्वारा बनाई गई गणपति की प्रतिमा का सौन्दर्य तो देखते ही बनता है। जिरोती निमाड़ की। एक प्रसिद्ध चित्र शैली है। श्री राम नारायण उपाध्याय के अनुसार– "यदि निमाड़ में जिरोती त्यौहार न होता तो निमाड़ के घरों की दीवारें चित्रों से सूनी रहती।"

नागपंचमी के त्यौहार पर गोबर से लिपि भित्ति पर गेरू से निर्मित पृष्ठभूमि पर पीले, नीले तथा हरे रंग से चित्रों को चित्रित किया जाता है, साथ ही साथ सफेद खडिया मिट्टी की पृष्ठभूमि पर काले रंग से नाग देवता के आलंकारिक चित्रों का अंकन किया जाता है। इन चित्रों के माध्यम से निमाड़ अपनी सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखे हुए है। गोबर और मिट्टी से बना कला का भव्य रूप दीपावली तथा गोवर्धन जैसे त्यौहारों पर देखा जा सकता है। यह लोक कला में नित नये प्रयोग करते रहते है। यहाँ की कला की खुश्बू मानव की कल्पनाओं और भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। उत्सव धर्मी होने के कारण निमाड वह हर जगह अपनी कला का प्रदर्शन भी करता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य चाहे वह छोटा हो या बडा सभी सदस्य मिलकर इस कला को मूर्त रूप प्रदान करते है। आपस में प्रेम और सम्मान की वजह से सभी में कला के प्रति प्रेम बना रहता है।

लगभग सभी जातियों के लोग निमाड़ में निवास करते हैं। शुरू से ही निमाड़ का इतिहास गौरवशाली रहा है। पीढी दर पीढ़ी विभिन्न जातियों के लोग शिल्पकला के कार्य में लगे हुए है। जैसे मिट्टी के बर्तन बनाने वाला, लकडी की सुन्दर से सुन्दर वस्तु बनाने वाला, कॉच की चूड़ियाँ बनाने वाला, गहने बनाने वाला, लोहे का सामान बनाने वाले, कपड़े सीने वाले, झाड़ू बनाने वाले, जूता बनाने वाले इत्यादि सभी प्रकार का कार्य करने वाले अनेको जातियों के लोक शिल्प कार्य के संरक्षण हेतु कार्य कर रहे है। मिट्टी की मूर्तियाँ बर्तन बनाने वाले को कुम्हार जाति से सम्बन्धित माना जाता है। परम्पराओं का निर्वाह करते हुए कुम्हार जाति के लोग मिट्टी का कार्य करने में दक्ष होते हैं। कोई भी पर्व हो चाहे वह छोटा पर्व हो या बड़ा। सभी में इनकी बनायी हुई वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। विशेष रूप से दीपावली पर इनके द्वारा बनाये गये दियों का तो कोई सानी ही नहीं है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक इनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं का उपयोग अवश्य ही किया जाता है।

सुनार जाति के लोग काष्ठ शिल्प का कार्य पारम्परिक रूप से करते चले आ रहे है। लकडी के खिलौने हो या मूर्तियॉ, दरवाजे हो या खिड़कियॉ, बैलगाड़ी हो या खेती में काम आने वाले औजार हो। रथ हो चाहे सिंहासन, कुर्सी हो या मेज, पतंग हो या सोफा सेट आदि बनाने का कार्य इस जाति के लोग करते चले आ रहे है। साथ ही साथ लकडी

पर सुन्दर नक्काशी का काम भी बखूबी किया जाता हैं। भवन के अन्दर स्तम्भों आदि पर विभिन्न प्रकार के पशु पक्षी, बेल, बूटे और मानव आकृतियों का अंकन अद्वितीय है। यहॉ के बहुत से भवनों को स्थापत्य कला की श्रेणी में रखा जा सकता हैं। लखारा जाति के परम्परागत कलाकार लाख शिल्प में अत्यन्त ही प्रभावशाली कार्य करते है। नर तथा नारी दोनों ही लाख का काम करने में पारंगत होते है। लाख को पहले पिघलाते हैं फिर उसे पिघलाने के बाद गोल रस्सी की तरह डोरी बनाई जाती हैं फिर उसे ठप्पों की सहायता से चौकोर करके चूड़ा बनाया जाता है। फिर उसके बाद उन पर सफेद नगीनो का प्रयोग किया जाता है। चूड़ियों के अतिरिक्त लाख से खिलौने आदि अनेको सामान बनाये जाते हैं।

बांस से कलात्मक वस्तुयें बनाने वाले झमराल और बरमुंडा कहलाते है। बांस से बनी वस्तुयें सुन्दर होने के साथ–साथ जीवन में काम आने वाली भी होती है। जैसे दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुयें टोकरी, चटाई, पंखे खिलौने इत्यादि। निमाड़ में किसी भी शुभ कार्यो में बांस से बनी वस्तुओं का होना शुभ तथा पवित्र माना जाता है। मूल रूप से झाड़ू बनाने वाले पत्ता शिल्प के कलाकार ही होते है। पत्तो से छोटे छोटे हिरन, गाय, बैल, बैलगाडी आदि को बहुत ही सुन्दर तरीके से बनाया जाता है। शादी ब्याह आदि शुभ अवसरों पर पत्तों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। पत्तों से शुभ अवसरों पर नयनाभिराम प्रयोग देखते ही बनता हैं यहॉ के लोग सदियों से इस परम्परा का प्रयोग करते चले आ रहे है। खेतों और जंगलों में अपने आप उगने वाली घास से अनेको प्रकार के खिलौने बनाकर देना चरवाहा जाति के लोगों का काम है। घास से ही सुन्दर–सुन्दर आभूषण बनाकर पहनना ग्रामीण लड़कियों का प्रिय शौक रहा है। वह घास से विभिन्न प्रकार के आभूषण तैयार करती है और अपने आपको सुन्दर बनाने के लिए इनका प्रयोग करती है। वैग जनजाति की लडकियॉ जब नृत्य करती है तो अपने आपको सुन्दर बनाने के लिए इनका प्रयोग करती हैं। तो अपने आपको सुन्दर बनाने के लिए बीरन बांस की (बांस का एक अन्य नाम) छल्लों की तरह लटकने का गुच्छा बनाकर अपने जूडे में सजाती है। पीली वाली घास से चिड़िया, कबूतर, मोर, गाय, हिरन, ऊँट, और हाथी आदि पशु पक्षी बनाये जाते है। किसानों के घरों में सन और सुतली का कार्य भी किया जाता है। इसका कार्य बांस और केले के पेडो द्वारा किया जाता है। इससे खटिया भी बुनी जाती हैं। जैसे लहरिया भात, खजूर भात, चौखाना भात, सिंगोडा भात, फूल पत्ती भात, आदि विभिन्न प्रकार की चारपाई इससे द्वारा बनाई जाती हैं कभी कभी रस्सी में लाल, पीला, हरा रंग चढाकर खटिया बुनी जाती है। इस तरह विभिन्न प्रकार के रंगों से बुनी खाट का सौन्दर्य अद्वितीय होता है।

परम्पराओं का निर्वाह करते हुए सिलावर जाति के लोग पत्थर की मूर्तियों तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं को बनाने का कार्य करते हैं। प्रमुख रूप से गणेश, शिवलिंग, शिव की मूर्ति, नंदी आदि की मूर्तियॉ विशेष रूप से बनाई जाती है। अन्य उपयोगी सामान में पाट, सिल, ओखली, मूसली आदि बनाये जाते है। बुनकर जातियों में पनिका, आल्या, बलाई, खटिक, कोष्ठी, साकी, मारू, मोमिन आदि जाति के लोग कपडा बनाने का कार्य करते है। यह लोग विशेष रूप से धोती, साड़ी, खेस, कम्बल, लट्ठा आदि बनाने का कार्य करते हैं। कलात्मक महेश्वरी साड़ी, सूती व रेशमी दोनों ही प्रकार की बनाई जाती हैं। यहाँ की बनी साड़ी पक्के रंग की होने के साथ साथ सुन्दर व टिकाऊ भी होती है। इनकी साडी के काम की प्रशंसा भारत में नहीं अपितु विदेशों में भी इनके काम को सराहा जाता है। छपे हुए सूती कपड़े पहनने की परम्परा निमाड़ में बहुत पुरानी है। रंगारा, नीलगर, छापी, खत्री, भावसार आदि जाति के लोग रंगाई और छपाई का कार्य करते है। छीपा जाति के लोग हिन्दू और मुसलमान दोनों ही होते है। इन दोनों जाति के लोगों को रंगारा नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इस जाति के लोगों को कहीं–कहीं रंगरेज नाम से भी सम्बोधित करते है। इनके द्वारा कपड़े पर किये हुए वानस्पतिक रंग इतने पक्के होते है कि जैसे–जैसे कपड़ा धुलता है वैसे–वैसे रंग और भी अधिक गहरा और चटकीला होता जाता है। इनके द्वारा छापे गये कपड़ों की सबसे ज्यादा मांग होती है।

गुजरात और मध्य प्रदेश के भीलों की रथवा जनजाति के लोग पृथ्वी को माता और आकाश को पिता मानते हैं यह लोग अपने चित्रों में गाय और बैल को प्रमुख रूप से चित्रित करते है। इनके बनाये गये लोक चित्रों में जंगल, बादल, सागर आदि के साथ–साथ घोड़ों का अंकन प्रमुख रूप से किया गया है। घोड़ों को दौड़ने के साथ आकाश में उड़ते हुए भी चित्रित किया गया है। विवाह जैसे अवसर पर घर के भीतर वाले कमरे में देवता की स्थापना की जाती है और दीवारों पर परम्परा के अनुसार पिथौरा देव के चित्र चित्रित किये जाते है। चित्र के बीच में छोटी–छोटी बिन्दियों अथवा रेखाओं से घोड़े को अंकित किया जाता है। इन चित्रों में चटकीले रंगों का प्रयोग किया जाता है। लयात्मक रेखाओं का प्रयोग इन चित्रों को और अधिक सुन्दरता प्रदान करता है। दीवारों, कपड़ो, चादरों आदि पर इनकी छटा देखते ही बनती है।

भारतीय कला की खुश्बू विदेशों में ही नहीं अपितु समस्त संसार में देखी जा सकती है। जो अपने अवगठन में न जाने कितनी परम्पराओं, विश्वासों, आस्थाओं और न जाने कितने रीति रिवाजों को समेटे समस्त संसार को अपनी खुश्बू से आल्हादित कर रही है। ग्रामीण अंचलों में रची वसी इसकी खुश्बू सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। परम्पराओं को निभाते हुए जैसे जैसे कला आगे बढती है वैसे–वैसे इसकी खुश्बू भी चहुँ ओर फैलती जाती है। कला की खुश्बू, समाज में हर रूप में व्याप्त हैं चाहे वो मिट्टी की मूर्तियॉ हो, चाहे पत्थर की, बांस की कारीगरी हो, घास की कला, चाहे

छपाई का कार्य हो कला की खुश्बू समाज के हर कार्य में फैली हुई है। कोई भी मांगलिक कार्य हो या कोई भी त्यौहार हो, इसकी खुश्बू चारों ओर अपने रंगों से सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। ईश्वर के अस्तित्व को जब मानव जड़ चेतन के रूप में स्वीकार करता है तभी कलाओं को आधार मिलता है। प्राचीनता को साथ लिए कला नवीनता की ओर अग्रसर होती है। भारत के हर प्रदेश में कला की खुश्बू को देखा जा सकता है। भारतीयों ने ही नहीं अपितु विदेशियों ने भी इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की हैं युगों–युगों से चली आ रही कला की खुश्बू को सर्वत्र ही देखा जा सकता हैं कला की खुश्बू हमारे संस्कारों में बंधा हुआ एक बंधन है। ज्यामितीय आकृतियों द्वारा अंलकृत हमारे रीति रिवाजों और आस्थाओं का अंकन है। साथ ही साथ नारी द्वारा उकेरा गया संयोजन भी है। अंधकार रूपी जीवन में कला की खुश्बू प्रकाश लेकर आती है और अपने प्रकाश से सबको नई शक्ति प्रदान करती है। यह त्यौहारों के अवसर पर मंगल की भावना से ओत प्रोत प्रतीकों का संप्रेषण है। मानव के सृजनात्मक प्रयास से विकसित लोककला की खुश्बू संसार में चारों तरफ फैली हुई है। आधुनिक कृत्रिमता से दूर लोक कला की खुश्बू वंशानुगत चलती चली आ रही है। लोक कला में जामिनी राम का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।